सुविचार

शासक होने से ही कोई आदर का पात्र नहीं हो जाता। उसके कर्म भी आदर के योग्य होने चाहिएं। रावण तो सोने की लंका का राजा था लेकिन अपने नीच कर्मों की वजह से उसे युग परिवर्तन होने के बावजूद आज भी जलाया जाता है।

- सुभाष चंद्र लखेड़ा, जैफरसन एवन्यू, न्यू जर्सी

जिंदाबाद

अनूप सरकारी कार्यालय से लौट कर आया तो ज्वालामुखी के समान फट पड़ा, मन की भड़ास निकालते हुए और जली कटी सुनाते हुए राहुल से बोला -तुम दफ्तरशाही /नौकरशाही /लाल फीता शाही के विषय में क्या जानते हो! अनूप कार्यालयीन व्यवस्था को लेकर बहुत आक्रोश में था। राहुल उसे ढाढस बंधाते हुए बोला -माना कि कार्यालय है। कार्यालय में अधिकारी हैं। मातहत कर्मचारी हैं। मातहत कर्मचारी हमेशा यस सर - यस सर, जी सर- जी सर, हाँ जी -हाँ जी करते हैं। ये तो जी हुजूरी हुई। ताबेदारी हुई। तो फिर लोकतंत्र कहाँ है। क्या लोकतंत्र को दफ्तरशाही लील गई। यदि ऐसा है तो बड़ा अनर्थ हुआ। दफ्तरशाही में मानवीय संवेदनाओं का ख्याल नहीं रखा जाता है। यह जनता के प्रति उदासीन रहती है। इससे भ्रष्टाचार पनपता है। फाइलों का निपटारा विलंब से होता है। अनावश्यक औपचारिकताओं की वजह से कागजी कार्यवाहियों का बोझ बढ़ता है। अधिकारी पद का दुरुपयोग करते हैं जिससे नवाचार में कमी आती है। नियमों का मकड़जाल फैला रहता है। प्रशासनिक लेट लतीफी होती है। नौकरशाही में मातहत कर्मचारी मानसिक गुलामी में जीता है। राहुल की बात सुनकर अनूप बोला -जय बोलो बेईमान की ।भ्रष्टाचार जिंदाबाद।

और दोनों ठठाकर हँस पड़े।

अविनाश ब्योहार
जबलपुर मप्र

'व्रत'

'मम्मी, आज से मैं व्रत रखूंगी '

कहकर रिया तेजी से स्कूल के लिए निकल गई।

विस्मित थी अमृता, ऑफिस के लिए तैयार होते हुए सोचने लगी, पूजा-पाठ-व्रत के नाम से बिदकने वाली इस लड़की को आज क्या हुआ है?

शाम को रिया को दादी के साथ आराम से पकौड़े और चाय का नाश्ता करते हुए देख, मम्मी हंस पड़ी,

'मुझे पता था रिया, व्रत नहीं कर पाओगी। तुम्हारे बस में भूखा रहना नहीं है। '

'मम्मी, मैंने दादी के लिए व्रत किया है।

सहेलियों के साथ आज की मूवी आउटिंग कैंन्सिल कर के व्रत की शुरुवाद कर दी है। अब से शाम को रोज एक घंटा दादी के साथ बिताऊंगी, है न मेरी प्यारी दादी। '

रिया, दादी के गले में हाथ डाल मुस्करा रही थी।

चंद्रकला जैन

मर्ज

मित्र चकोर जिस मर्ज का शिकार है, उसको मैंने ' मैं कह रहा था न आपसे ' नाम दिया है।

दरअसल, आपको अब तक इस मर्ज से पीड़ित बहुत से लोग मिले होंगे लेकिन आपने ध्यान नहीं दिया होगा। खैर, इस मर्ज से पीड़ित इंसान हमेशा अपने को सही साबित करने की कोशिश में लगे रहते हैं।

उदाहरण के लिए चकोर को ही लो। कल तीन मई की शाम को पार्क में टहलते समय पश्चिम बंगाल चुनाव में दीदी की जीत को तय मानने वाले चकोर ने अभी कुछ देर पहले लगभग दस बजे सुबह मेरे को फ़ोन पर कहा, ' शेखर जी, इस बार बंगाल में भाजपा की सरकार बनेगी। मैं कल कह रहा था न आपसे कि दीदी का इस बार जितना मुश्किल है। मैंने तो ....। '

चकोर की आगे की बात सुने बिना मैंने झुंझलाते हुए फोन काट दिया क्योंकि मैं जानता हूं कि चकोर जैसे लोग एक बड़े नेता की तरह झूठ बोलने में माहिर होते हैं।

सुभाष चंद्र लखेड़ा, जैफरसन एवेन्यू, न्यू जर्सी

गलती

बस स्टैंड पर दोनों खड़े थे। इधर-उधर देखते हुए; औरों से नजरें छुपाते बतिया रहे थे। आवाज बहुत धीमी थी।

'आज बहुत खूबसूरत दिख रही हो। दिनों-दिन तुम्हारी सुंदरता बढ़ रही है।'

उसने कुछ नहीं बोला।

'क्या बात है रानी ? हमसे खफ़ा हो क्या ? हमसे कोई शिकवा..?'

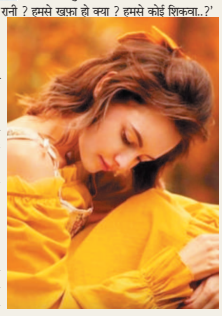

'कोई खफ़ा नहीं मैं तुमसे। कोई शिकवा-शिकायत नहीं है तुमसे। पर...!'

'पर क्या ? कहो...कहो...क्या बात है ? कहीं चलना है क्या ?'

'हाँ। चलना ही है।' 'कहाँ ? बोल ; बंदा हाजिर है।'

'मं दिर . . . !'

'मंदिर...! हद् रे पगली ! मंदिर कोई जगह है जाने की। चलो, दल्ली राजहरा के पास कोकाण घाटी चलते हैं।' 'नहीं। आज हमें मंदिर जाना है।' 'क्यों ? ऐसा कौन सा मंदिर है, जहाँ जाना है ? और ऐसी क्या बात है कि हमें मंदिर ही जाना है ?' 'हाँ हमें मंदिर ही जाना है।' 'बट चाय ?' 'हम शादी शादी करेंगे।' 'आज ऐसी क्या बात हो गयी ? क्या हो गया है तुम्हें ?' 'हाँ...। आज हमें शादी करनी है। बहुत जरूरी है शादी। आज...और...अभी..इसी वक्त।' 'पर क्यों... ?' 'क्योंकि आय एम प्रेग्नेंट। मैं तुम्हारे बच्चे की माँ बनने वाली हूँ। सो, अब हमें शादी कर ही लेनी चाहिए।' 'श्वेता... ! तुम अच्छी तरह जानती हो कि मैं तुमसे हरगिज शादी नहीं कर सकता; चाहे कुछ भी हो जाय।' 'सुशील..!!! ' 'कर डाली न बिटिया... तुमने गलती। लड़कियों के साथ ऐसा ही होता है।' पास में ही फर्श पर लेटी एक भिखारन ने कहा।

टीकेश्वर सिन्हा
'गब्दीवाला'

बाप बनकर देखिए

आपको लगता है कि दुनिया का सिर्फ एक बाप परेशान है। आप गलतफहमी में जी रहें हैं। नहीं साहब जब से ये मोबाइल आया है। हम बापों की टेंशन कुछ ज्यादा ही बढ़ गई है। उम्र-दराज होने को है। दहाई का आंकड़ा छू लिया है। पचास के आसपास पहुँचने वाले हैं। लेकिन इस उम्र के लोगों को दम मारने की फुर्सत नहीं है। सुबह से शाम तक हलकान रहते हैं। रही सही कसर बच्चों ने पूरी कर दी है। भाई साहब की डिमांड पूरी होती ही नहीं है। भाई साहब को पहले चाहिए थी। मैनें कहा भाई कोई सौ - दो - पाँच सौ रुपये की घड़ी खरीद लो। टाईम देखने से मतलब है। सौ रुपये की घड़ी भी उतना ही समय बताएगी। जितना पाँच सौ रुपये की। कहने का तात्पर्य ये है कि राजा बनकर अपनी और अपने लोगों की घड़ी ले लो। साहब महीने भर मुँह फुलाए रहे। लेकिन बीच बीच में मुँह खोलते भी थे। एडी चोटी का जोर लगाए हुए थे। चार- बार दुकानदार के पास गया। बहुत सी घड़ियाँ देख लीं।चैन वाली, बेल्ट वाली, वाटर प्रूफ। लेकिन? भाई साहब को कोई घड़ी पसँद नही आई। उनको स्मार्ट वॉच चाहिए थी। स्मार्ट वॉच पहनने के लिए आदमी को स्मार्ट होना होता है। कुछ कमाना -धमाना भी पड़ता है। बाप को कुछ रिलीफ भी देना होता है। जो स्मार्ट होता है रील्स देखकर समय नही जाया करता है। बल्कि समय का सदुपयोग करता है। क्षण -क्षण को बचाता है। ' जो काल -करै सो आज कर' की उक्ति पर काम करता है। अब वॉच करने के लिए वैसी दृष्टि आपके पास तो है नहीं। दृष्टि होती तो सत्रह सौ की घड़ी ना खरीदते। ना तो आपके पास समय देखने का समय है। ना ही वैसी दृष्टि है। समय देखने से ज्यादा है। समय को देखना। जो समय को पहचान लेता है। उसको समय को देखने की जरूरत नहीं पड़ती है। जो मितव्ययी होता है। समय उसकी ही कद्र करता है। खचीले लोग हमेशा दूसरों के आगे हाथ फैलाते हैं। लिहाजा बुरे वक्त के लिए भी कुछ बचाकर रखना जरूरी होता है। लेकिन भाई साहब को महीन- से -महीन बात भी मोटी और बकवास लग रही थी। उनके सिर पर घड़ी का भूत सवार था। उनको हर हाल में स्मार्ट वॉच चाहिए था। चौदह -पँद्रह साल की उम्र में लोग शहंशाह बन जाते थे। बाहर से आक्रमण करके राजा बन जाते थे। कहने का तात्पर्य ये है कि राजा बनकर अपनी और अपने लोगों की दूसरें पर निर्भरता खत्म कर देते थे। समय को पहचान ले ऐसी दृष्टि आजकल के युवाओं के पास कहाँ है। पैसे तो आपके लगने नहीं हैं, अपनी जेब से । जाना है बाप के पैकेट से। गरीबी में आटा गीला होना। इस कहावत का अभिप्राय उस दिन मुझे समझ में आया था। जब बीच का महीना चल रहा हो। हाथ तँग हो। किसी तरह दोस्तों से कर्ज लेकर काम चलाया। लेकिन भाई साहब के पास तो भरपूर समय है। रील्स देखिए, गेम्स खेलिए। सही मायने में जिसको समय की कीमत पता हो उसके लिए ही घड़ी होनी चाहिए। जो समय से काम करता हो। एक रूपया में दस पैसा भी समय का महत्व समझता हो। जो समय का सेकेंड- सेकेंड बचाता हो। उनके लिए घड़ी की जरूरत है। जिनके लिए समय सोने से भी मँहगा है। उनके लिए नहीं जिनको सोने से फुरसत नहीं है। उनको घड़ी की भला क्या जरूरत है। सोने से मँहगे समय की जिसको कद्र नहीं

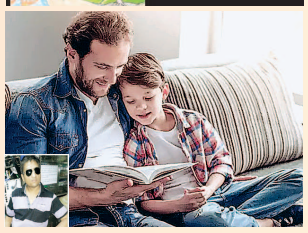

है। उसको घड़ी की जरूरत भी नहीं है। भाई साहब ने सुझाया की घड़ी का मतलब सिर्फ घड़ी नहीं है। बल्कि आजकल घड़ी से ज्यादा घड़ी का इस्तेमाल ब्लू टूथ से मोबाइल कनेक्ट करने के कारण घड़ी का महत्व बढ़ गया है। कुछ वैसे ही जैसे ग्रेजुएशन अब तीन की जगह चार साल का हो गया है। और इस लँबे सत्र के लोग फायदे गिना रहें हैं।

मैनें भाई साहब से पूछा ब्लू टूथ से मोबाइल कनेक्ट करके क्या होता है। भाई साहब ने बताया उससे कॉल रिसीव करने के लिए मोबाइल को छूना नहीं पड़ेगा। केवल ब्लू टूथ से कनेक्ट करके घड़ी से ही बात किया जा सकता है। भाई साहब से मैनें पूछा। जब मोबाइल छूना ही नहीं है। तो फिर मोबाइल लिया ही क्यों। भाई साहब ने समझाया। मोबाइल, मोबाइल है। और घड़ी , घड़ी है। मोबाइल साध्य है। घड़ी साधन है ।जैसे हम सीधे ईश्वर से कनेक्ट नहीं हो सकते। उसके लिए किसी बिचौलिए की जरूरत होती है। ठीक वैसे , जैसे भगवान् के ऐजेंट चर्च, मंदिर, मस्जिद में होते हैं। वैसे ही स्मार्ट वॉच ऐजेंट की तरह है। जो मोबाइल जैसे भगवान् से हमें सीधे कनेक्ट करवाता है।

जैसे नाव में पतवार की जरूरत होती है। जैसे पतवार के बिना हम नदी रूपी वैतरणी पार नहीं कर सकते। वैसे ही स्मार्ट वॉच के बिना हम मोबाइल से कनेक्ट नहीं हो सकते। एक तरह से मोबाइल आत्मा है। और घड़ी शरीर। वैसे ही मोबाइल के साथ घड़ी है। घड़ी देखकर जैसे टाईम पास नहीं किया जा सकता है। लेकिन मोबाइल देखकर अच्छे- से- अच्छे और खराब -से -खराब समय पास किया जा सकता है। लेकिन लगता है इस जन्म में इस शरीर को आराम मिलने से रहा। कारण है कि दुनिया मे जितने भी बाप है। सब- के- सब उम्मीद पाले हुए हैं कि उनकी संतान कुछ करे। इस इंटरनेट के गड्ढे में भाई साहब भी डूबे हुए हैं। सुबह स्कूल जाते समय रील्स देखते हैं। स्कूल से आते ही शर्ट- पैंट- टाई फेंक देते हैं। बस्ता फेकों और रील्स पर नजरें गड़ाओ। उनका जो कुछ भी ज्ञान है। वो रील्स अर्जित ज्ञान है। एक बाप की हसरत क्या होती है। उसका बच्चा पढ़े -लिखे। बाप को आर्थिक समस्याओं से मुक्ति दे। लेकिन ज्यों- ज्यों आपकी उम्र बढ़ती जाती है। जिम्मेदारियों के चलते तनाव बढ़ता जाता है। जवानी के समय में बूढ़ापे की फीलिंग आती है। भाई साहब का पढ़ाई- लिखाई से लगाव खत्म होता जा रहा है। भाई मत बन आई. ए. एस. , मत बन डॉक्टर , मत बन इंजीनियर। टेक्स्ट की किताबों से तो जी ना चुरा। .अरे भाई नीट , यू.पी.एस.सी . , जे.पी.एस.सी , पी.सी.एस.की तैयारी छोड़ दो। उसके लिए पढ़ना पड़ता है। रील्स देखकर नीट नहीं निकलता है। बात यहीं खत्म नहीं हुई थी । स्मार्ट वॉच महीने भर भी ना पहना भाई साहब ने । स्मार्ट वॉच कहीं फेंका हुआ है टेबल पर किनारे। भाई साहब नन्हिहाल से लौटे हैं। हाथ में घड़ी ना देखी तो पूछा। भाई साहब आपकी घड़ी नहीं दिख रही है। स्मार्ट वॉच। भाई साहब से तो नहीं लेकिन श्रीमती जी से अदभूत जानकारी मिली कि भाई साहब ननिहाल से तो सकुशल लौट आए हैं।

लेकिन स्मार्ट वॉच का चार्जर और केबल वहीं छोड़ आए हैं। भाई साहब बुद्धि के बलिहारी हैं। भाई साहब को भूलने की बेतरीन बीमारी है। भाई साहब के कारण नया एडटर और केबल लेकर आना पड़ा। सत्रस सौ की घड़ी खरीदने के बाद तीन सौ का केबल का चूना भी लगा। साल भर बाद कि कहानी बता रहा हूँ। कहँ केबल और अब कहँ एडटर। स्मार्ट वॉच की बात ही मत पूछिए। चीजों को खरीदना है। चीजों की इज्जत इनके पास नहीं है। अभी साल भर ना बीता था कि भाई साहब को साईकिल खरीदने का खब्त सवार हो गया। भाई साहब को पढ़ना-लिखना तो है नहीं। कुछ -ना- कुछ तीन- पाँच सूझता रहता है। बैठल बनिया का करो। इस कोठी का धान उस कोठी। रोज सुबह शाम के तगादे पर आखिर एक दिन साईकिल खरीदनी पड़ी। दो- चार महीने ठीक चलाया। अब साईकिल में गियर लगवाने की कह रहें हैं, भाई साहब। अब साईकिल तक तो बात ठीक थी। वर्जिश हो जाती थी। लेकिन इधर भाई साहब को साईकिल खींचने में ताकत लगती है।

भाई साहब पिज्जा खाकर काम चलाते हैं। उनको नहीं पता पिज्जा खाकर साईकिल नहीं चला सकते। लिहाजा गियर लगवाने की कह रहें हैं। भाई साहब के प्रिय खाने की चीजों में पिज्जा , समोसा और मैगी है। अब उनको कौन बताए कि ये सब खाने की चीजें नहीं हैं। खाने वाली,पीने वाली चीजों से उनका मन भागता है।.दूध पीना नहीं चाहते। लस्सी देखकर उल्टी आती है। खीरा -तरबूज से परहेज है। भींगे चने देखकर ऊबकाई आने लगती है। अमरूद देखते हि गश खाने लगते हैं। तो भाई साहब चावल , दाल, दूध ,फल सब्जियाँ जब तक ना खाएँगें। तब तक आपको साईकिल में गियर की जरुरत पड़ेगी। और मैं साईकिल में गियर लगवाने से रहा!

महेश कुमार केशरी
बोकारो झारखंड
पिन 829144

दफ्तर के बड़े बाबू

बड़े बाबू तो दफ्तर की आन-बान और शान है और वे ही तो दफ्तर की जान भी है । उनसे है रौनक और हलचल दफ्तर के कोरिडोर से चाय की दुकान तक । वे है अफ़सर की नाक के बाल । उनके आते ही दफ्तर चलने लगता वर्ना दिनभर सन्नाटा सा पसरा रहता । उनके चाहने से ही फाइले चलने लगती नहीं तो कोने में पड़ी धूल फांकती रहती । वैसे फाइले भी उनकी ही चलती जो उनसे हलो हाय करते , उनके सामने बैठने की जुर्रत करते और उनकी आंखों में आंखे डाल बाते करते करते टेबल के नीचे से उनके हाथ में कुछ धरते । दफ्तर में वे अपने ही ढंग से कार्य करते मिनिटों के काम घंटो में और घंटो के काम मिनिटों में करना उनकी खास आदत थी । काम की दरकार लिये सैकड़ो लोग रोज ही दफ्तर आते मगर उनको कैसे लटकाना,भटकाना, उलझाना और उलझाकर कैसे रफूचक्कर करना इसमें उनकी महारथ हांसिल थी । दफ्तर में प्रायः वे सरकार द्वारा जारी जनहित योजनाओं को लागू कराने के प्रोजेक्ट बनाने में ही मशगूल रहते इसलिये वे ' प्रोजेक्ट बाबू ' के नाम से भी जाने जाते ।

अपने प्रोजेक्टों में वे मैदान को नाला और नाले को नदी बता उसकी बाढ़ में आस-पास की बस्तियों को बहा देते और बहाई बस्तियों को फिर से बसाने के लिये भी प्रोजेक्ट तैयार कर देते ।

ऐसे वैसे वे कई तरह के प्रोजेक्ट बनाते मसलन खेतों में सिंचाई के लिये छोटे छोटे तालाब खुदवाने और फिर जन हित में खतरा बता उन्हें समतल करवाने ,मुख्य सड़क से ग्राम तक पहुंच मार्ग बनवाने और उनके उखड़ने पर पैच वर्क करवाने , स्ट्रीट लाइटें लगवाने और उन्हें फ्यूज करने और फ्यूज दुबारों को फिर से रौशनकरने तथा पेयजल हेतु नलों की लाईने बिछाने और बिछाई गई पाईप लाइनों की लिकेज बताने फिर उन्हीं लिकिज को दूर करने के लिये फंड बनाने जैसे कई प्रोजेक्ट बड़े बाबू के पास रेड़ी रहते । दफ्तर के गलियारे में वे अपनी बगल में फाइले दबाये प्रायः दिख जाते । अपनी मर्जी से जब तब यस सर ! हलो हां जी सर कहते पर्दा उठा अफ़सर के केबिन में घुसजाते और घुसते ही उनके कान में कुछ फुस फुसाते फिर दोनों हाथ मिलाते अफ़सर मुस्कराते और बड़े बाबू पान चबाते नथुने फुलाते अफसर की स्वीकृत किये हस्ताक्षरित फाइले बगल में दबाये बाहर आते और अपने कक्ष में खाली पड़ी.कुर्सी पर पैर लंबे कर बैठ जाते और बैठते ही इधर उधर ताकते हुए आलमारी के पिछे अपने मुंह में दबी पान की गिलौरी को पुच्छ कर थूकते फिर टेबल पर पड़ी घन्टी घनघनाते,जमादार को लताड़ते, कल्लू पर दहाड़ते और हाजरी पर उसकी गोले लगाते, तनख्वाह काटने की घुड़की देते फिर जेब में पड़ी चाबी टटोलते उंगली में उसका छल्ला घुमाते टेबल पर पड़ी अनसेफ फाइलों को सेफ में रखने का हुक्म दे, सी यु आल टूमारो कह स्कूटी स्टार्ट कर खिसक लेते ।

प्रफुल्ल त्रिवेदी
प्लाट नंबर 767 सिल्वर
स्टार सिटी एक्सटेंशन 1 ,
(निहालपुरमुंडी,
सिलिकॉनसिटी) इंदौर,
452012

स्मार्ट शहर में कुत्ते, इंसान और जिम्मेदारी–सब आवारा

कहते हैं कि हम अब 'स्मार्ट शहर' में रहते हैं। हर चौराहे पर चमकती लाइटें, चौड़ी सड़कें, मोबाइल पर उपलब्ध सुविधाएं और विकास के बड़े-बड़े दावे– सब कुछ देखने में अत्याधुनिक लगता है। लेकिन जरा सुबह या देर रात सड़क पर निकलकर देखिए, असलियत अपने आप सामने आ जाएगी। वहां आपका स्वागत करते हैं–आराम फरमाते, झुंड बनाकर घूमते और कभी-कभी पीछा करते कुत्ते। ऐसा लगता है जैसे शहर का असली नक्शा इन्हीं के हिसाब से बना हो और हम सब केवल मेहमान हों। पहले के समय में मोहल्लों के कुत्ते पहरेदार माने जाते थे। उनकी भौंक से लोग सतर्क हो जाते थे, और उन्हें घर का रक्षक समझा जाता था। 'घर का रखवाला' होने का उनका अपना सम्मान था। लेकिन समय बदला, शहर बदले और कुत्तों की भूमिका भी बदल गई। अब वे न तो किसी एक घर के हैं, न ही किसी एक गली के– पूरे शहर पर उनका बराबर अधिकार है। जहां मन किया, वहीं बैठ गए, जहां भूख लगी, वहीं कुछ भी खा लिया, और जहां भीड़ दिखी, वहीं अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी। विडंबना देखिए–हमने शहर को स्मार्ट बनाने के लिए करोड़ों रुपए खर्च कर दिए, लेकिन बुनियादी समस्याओं पर ध्यान देने की फुर्सत नहीं मिली। 'ऊंट के मुंह में जीरा' जैसी योजनाएं बनती हैं, घोषणाएं होती हैं, लेकिन जमीन पर स्थिति जस की तस बनी रहती है। अधिकारी बैठकों में व्यस्त हैं और कुत्ते सड़कों पर मस्त हैं। यह विरोधाभास हमारे विकास मॉडल पर बड़ा प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। सबसे दिलचस्प और खतरनाक दृश्य तब होता है जब रात के समय कोई बाइक सवार सुनसान सड़क पर निकलता है और अचानक कुत्तों की टोली उसका पीछा करने लगती है। उस समय 'आसमान सिर पर उठाना' भी कम पड़ जाता है। चालक अपनी जान बचाने के लिए तेजी से भागता है, संतुलन बिगड़ने का डर रहता है, और कुत्ते मानो किसी खेल प्रतियोगिता में भाग ले रहे हों। कई बार यह खेल गंभीर दुर्घटनाओं में भी बदल जाता है, लेकिन यह समस्या फिर भी 'राम भरोसे' ही चलती रहती है। अब बात जिम्मेदारी की करें, तो वह तो 'नौ दो ग्यारह' हो चुकी है। जब कुत्ते शांत रहते हैं, तो लोग उन्हें मोहल्ले का सदस्य मानते हैं, प्यार से खिलाते हैं। लेकिन जैसे ही कोई घटना होती है, जिम्मेदारी तुरंत नगर निगम पर डाल दी जाती है। 'घर का जोगी जोगड़ा, आन गांव का सिद्ध' की तरह हम अपनी भूमिका को नजरअंदाज कर देते हैं और दूसरों से समाधान की अपेक्षा रखते हैं।

नगर निगम अपने स्तर पर प्रयास जरूर करता है–नसबंदी अभियान, पकड़ो-छोड़ो योजना, टीकाकरण आदि। लेकिन यह सब 'ढाक के तीन पात' जैसा ही नजर आता है। कुछ कुत्तों को पकड़ लिया जाता है, कुछ को कहीं और छोड़ दिया जाता है, और कुछ ही दिनों में वही स्थिति फिर से सामने आ जाती है। यह एक ऐसा चक्र बन गया है, जो खत्म होने का नाम ही नहीं लेता। इस समस्या में समाज की भूमिका भी कम नहीं है। एक तरफ हम स्वच्छता और अनुशासन की बातें करते हैं, दूसरी तरफ घर का बचा हुआ खाना और कचरा सड़क पर फेंक देते हैं। यही कचरा कुत्तों के लिए भोजन बनता है और उनकी संख्या बढ़ने का कारण भी। फिर हम कहते हैं कि कुत्ते बहुत बढ़ गए हैं। 'जैसी करनी वैसी भरनी'–हमारी आदतें ही हमारी समस्या बन जाती हैं। यह केवल कुत्तों की समस्या नहीं है, बल्कि यह हमारे सामाजिक व्यवहार और सोच का प्रतिबिंब है। हमने विकास को केवल भौतिक सुविधाओं तक सीमित कर दिया है, जबकि असली विकास अनुशासन, संवेदनशीलता और जिम्मेदारी में निहित होता है। स्मार्ट शहर का मतलब केवल तकनीकी सुविधाएं नहीं, बल्कि एक ऐसा समाज है जो अपने परिवेश और समस्याओं के प्रति जागरूक और जिम्मेदार हो। आज जरूरत है कि हम केवल आलोचना न करें, बल्कि समाधान का हिस्सा बनें। कुत्तों का मानवीय तरीके से प्रबंधन, उचित भोजन व्यवस्था, टीकाकरण और जनजागरूकता–इन सब पर मिलकर काम करना होगा। 'एक हाथ से ताली नहीं बजती '– सरकार और समाज दोनों को अपनी-अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी। हमें यह भी समझना होगा कि कुत्ते भी इस शहरी पारिस्थितिकी का हिस्सा हैं। उन्हें पूरी तरह हटाना संभव नहीं, लेकिन उनके साथ संतुलन बनाकर रहना जरूरी है। इसके लिए योजनाबद्ध प्रयास, स्पष्ट नीति और नागरिकों की भागीदारी अनिवार्य है। वरना वह दिन दूर नहीं, जब हम और भी अधिक स्मार्ट उपकरणों से घिरे होंगे, लेकिन सड़क पर निकलने से पहले यह सोचना पड़ेगा कि कुत्तों की टोली किस दिशा से आएगी। तब शायद हमें एहसास होगा कि असली समस्या तकनीक की नहीं, बल्कि हमारी सोच और व्यवहार की है। अंत में बस इतना ही– स्मार्ट शहर बनाने से पहले हमें स्मार्ट नागरिक बनना होगा। जब तक हम अपनी जिम्मेदारियों को नहीं समझेंगे, तब तक कोई भी योजना, कोई भी विकास अधूरा ही रहेगा। वरना कुत्ते तो अपनी जगह बने रहेंगे, और हम हर दिन यही सोचते रह जाएंगे– 'कुछ तो गड़बड़ है।'

अजय कुमार बियानी
इंजीनियर और स्वतंत्र
लेखक